REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 2 | NOVEMBER - 2022

प्रेमचन्द्रोत्तर मुख्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार

डॉ. अभिमन्यु
असिस्टेंट प्रोफेसर, (हिन्दी विभाग),
मदन मोहन मालवीय पी.जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया.

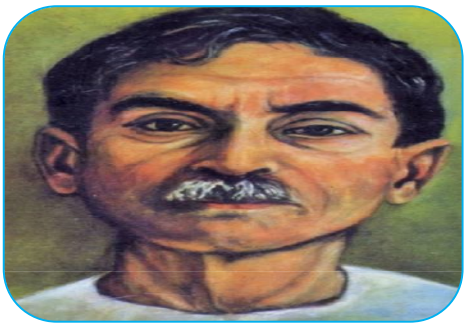

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में बाह्य संघर्ष ने व्यक्ति के अंतः संघर्ष का स्थान ले लिया और उपन्यासकार अनुभूति और कल्पना के बल पर व्यक्ति मानस में होने वाले संघर्षों का चित्रण करने लगा। इस दिशा में फ्रायड, युंग, एडलर, स्टेकेल व एलीसा हैवलॉक के सिद्धान्त तथा मान्यताएं हिन्दी उपन्यासकारों की पथ प्रदर्शक बनीं। इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार हैं इलाचन्द्र जोशी (प्रेत और छाया, सन्यासी, पर्दे की रानी, मुक्तिपथ), भगवती चरण वर्मा (चित्रलेखा, टेढ़े मेढ़े रास्ते, आखरी दांव) अज्ञेय (शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप), जैनेन्द्र (परख, सुनीता, त्याग पत्र, कल्याणी), डॉ0 देवराज (पथ की खोज, बाहर–भीतर, अज्ञेय की डायरी), धर्मवीर भारती (गुनाहों का देवता, सूरज का सातवॉ घोड़ा), प्रभाकर माचवे, नरेश मेहता मुख्य हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्दोत्तर मुख्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार निम्न हैं–

1. अज्ञेय
2. इलाचन्द जोशी
3. जैनेन्द्र

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय':

'शेखरः एक जीवनी' के साथ अज्ञेय ने जब हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में पदार्पण किया, तथा कथा–चेतना में एक ऐसी लहर आ चुकी थी जिसके कारण सम्बन्धों के सामाजिक विस्तार में जाने की अपेक्षा उनकी मनोवैज्ञानिक गहरायी में जाना ज्यादा जरूरी मान जाने लगा था। यह लहर उपन्यास की केन्द्रीय वस्तु को समाज–चिंता से व्यक्ति चिंता की ओर ठेलने का काम कर रही थी। प्रेमचन्द की परम्परा से उपन्यास का यह विचलन आगे के लिए भटकाने वाला मोड़ साबित हुआ था बीच का एक जरूरी सोपान यह बहस का विषय है, लेकिन यह निर्विवाद है कि इस विचलन को बदलती हुई परिस्थितियों में उभर रही व्यक्तिवादी चेतना का सहयोग पूरी तरह प्राप्त था। व्यक्तिवादी चेतना के उन्मेष से जहाँ बुद्धि, निपुणता और जीवन–स्तर आदि के क्षेत्र में विशिष्टता अर्जित करने की होड़ बढ़ रही थी, वहीं सामाजिक उद्देश्योन्मुखता का अस्तित्व भी संकट में पड़ रहा था। सामान्यतया, व्यक्तिवाद की यह प्रवृत्ति होती है कि वह मर्यादाओं का नियमन करने वाली सामाजिक सचेतनता और स्वछन्द व्यवहारों के लिए छूट देने वाले वैयक्तिक मनः प्रवाह के बीच अन्तर बढ़ता देखने को अपनी नियति मानकर चलता है। वैज्ञानिक तौर पर इस अन्तर की विश्वसनीय व्याख्या के लिए आधुनिक लेखकों

विचारकों को सैद्धान्तिक आधारों की जरूरत थीं, उनमें से एक उन्हें ''मनोविश्लेषण सिद्धान्त'' के रूप में प्राप्त हुआ। फ्रायड को इसी तथ्य के साक्षी भाव से अज्ञेय देखते हैं और लिखते हैं– उसकी मनोविश्लेषण पद्धति ने व्यक्ति मानस और व्यक्ति चेतना की गहनताओं पर प्रकाश डाला। इससे उपन्यासकार को व्यक्ति मानस को समझने में बड़ी सहायता मिली, बल्कि एक नयी दृष्टि और पैठ मिली। जिसके सहारे वह व्यक्ति के मन के भीतर होने वाले संघर्ष को पहचान सका।[1]

श्री अज्ञेय जी मानव के अर्न्तमन की गहराईयों में बैठने वाले अपने ढंग के एकमात्र ऐसे कलाकार हैं, जिन्होंने फ्रायड के अवचेतन मनोविज्ञान की विस्तृत जानकारी प्राप्त की और उसके अनुसार भय, सेक्स तथा अंह को आधार मानकर अपने चरित्रों की सृष्टि की।

प्रत्येक मनुष्य का अंह बड़ा प्रबल होता है। इसके दमन से मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ बन जाती हैं। मन में विकृतियों का जन्म होने लगता है परिणामस्वरूप वह व्यक्ति कुण्ठित हो जाता है। उसके अन्दर हीनता संकोच तथा सन्देह का भाव उत्पन्न हो जाता है। उसके व्यवहार में स्वाभाविकता नहीं रह जाती। वह अवसरवादी हो जाता है। ''शेखरः एक जीवनी'' का शेखर और शशि 'नदी के द्वीप' की रेखा, भुवन, चन्द्रमाधव, हेमेन्द्र तथा 'अपने–अपने अजनबी' की योके और सेल्मा आदि व्यक्तित्व में कुण्ठा, अहमन्यता तथा बौद्धिकता देखी जा सकती है।

बालक शेखर की जिज्ञासाओं का दमन होता है, उसे दण्ड दिया जाता है तथा अन्य कुछ कार्यों को करने से मना किया जाता है। इन सबका उस पर इतना गहरा असर होता है कि उसके मन में ग्रन्थियों बन जाती हैं। वह माँ से घृणा करने लगता है सामाजिक रूढ़िगत परम्पराओं को अपने अनुकूल देखना चाहता है। अन्त में उसका मन विद्रोही हो जाता है। शशि का पति रामेश्वर उसकी शारीरिक पवित्रता पर इतना सन्देह करने लगता है कि वह उसे भ्रष्ट एवं पापाचारिणी कहकर घर से निकाल देता है। रेखा और हेमेन्द्र में तो तलाक तक हो जाता है। रेखा द्वारा भ्रूण की हत्या करने पर भुवन उससे दूर भागने लगता है। बूढ़ी सेल्मा के कुण्ठित व्यक्तित्व का प्रभाव योके पर भी पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित कुछ ऐसे पात्र हैं, जो कम पीड़ित हैं। 'नदी के द्वीप' का चन्द्रमाधव ऐसी ही पात्र है जो अकारण ही अपनी पत्नी से उदासीन होकर रेखा और गौरा की ओर आकृष्ट होता है। वह प्रथमतः रेखा को अपने प्रत्येक सम्भव छल–छदम के सहारे प्राप्त कर लेना चाहता है, लेकिन इसमें असफल होने के बाद वह गौरा को प्राप्त करने के लिए वैसा ही करता है। यहाँ भी उसे निराश होना पड़ता है और अन्त में वह फिर गृहस्थी की ओर लौटता है, लेकिन इसमें भी वह असफल होता है। रेखा डॉ0 रमेश की जीवन संगिनी बनने के बाद भी भुवन से अवैध सम्बन्ध रखती है। शेखर की चर्चा पहले ही हुई है। बाल्यकाल से ही शेखर में काम की वृत्ति प्रबल रही है। जर्मन सिपाहियों की वह हरकत, योके वेश्या बना ली जाती है, सिपाहियों की काम वृत्ति को ही व्यक्त करती है।

अज्ञेय, मार्क्स के जीवन दर्शन की अपेक्षा एक नये जीवन–दर्शन के निर्माण में डार्विन, आइंसटीन तथा फ्रायड की देन को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं, इसलिए उनके पात्र अपेक्षतया समाजोन्मुख बहुत ही कम हो पाते हैं। अन्तर्मुखता उनके पात्रों की विशेषता है। ऐसा नहीं कि वे बहिर्मुखी होना नहीं चाहते, बल्कि चाहकर भी नहीं हो पाते जैसे शेखर। अज्ञेय जी के पात्र सदा आत्म चिन्तन में लीन दिखायी देते हैं। उनके अन्दर मानसिक द्वन्द्व चलता रहता है। रामेश्वर के मन में शशि की पवित्रता को लेकर सदा इसी प्रकार द्वन्द्व चलता रहता है। वह लड़ता है अपने–आपसे, अपने मन से, अपने सन्देह के कारण।

'शेखरः एक जीवनी' के वस्तु विवेचन के प्रसंग में हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर भी जाना चाहिए कि यद्यपि 'शेखर' ही उपन्यास का सम्पूर्ण विषय है पर उपन्यासकार ने शेखर के परिवेश का भी बहुत यथार्थ रूप में चित्रण किया है और प्रकारान्तर से वह भी उपन्यास की वस्तु बन गया है। उपन्यास (प्रथम भाग) में शेखर के परिवार, स्कूल, पड़ोस, लखनऊ की बाढ़, प्रथम महायुद्ध, स्वाधीनता आन्दोलन, मद्रास के कॉलेज जीवन तथा केरल की जिन्दगी के जो चित्र उभरते हैं वे बहुत ही साफ, यथार्थ और प्रभावशाली है। उपन्यास के दूसरे भाग में लाहौर के कॉलेज परिवेश, कांग्रेस अधिवेशन, जेल–जीवन, प्रकाश की दुनिया, लाहौर के सामाजिक जीवन, गुप्त क्रान्तिकारियों की कार्य प्रणाली आदि के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जो उपन्यास को 'एक व्यक्ति का निजी दस्तावेज' मात्र नहीं बनने देते। जैसा अज्ञेय ने उपन्यास की भूमिका में लिखा हैः 'शेखर निःसंदेह एक व्यक्ति का

[1] शेखर एक जीवनी विविध आयाम (सम्पादक डॉ0 राम कमल राय, पृ0 115)

अभिन्नतम दस्तावेज है,.....यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है।..... मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है।''[2] उपन्यासकार ने शेखर के परिवेश और युग का, जिससे उसे संघर्ष करना पड़ता है, बहुत ही यथार्थ और सजीव चित्रण किया है।

उपन्यासकार अज्ञेय का कहना है मेरी रूचि व्यक्ति में रही है और नदी के द्वीप व्यक्ति चरित्र का उपन्यास है। घटना उसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से काफी है, पर घटना प्रधान उपन्यास वह नहीं है। वह व्यक्ति चरित्र का, चरित्र के उद्‌घाटन का उपन्यास है। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार, 'नदी के द्वीप' व्यक्तिगत तथा निजी अनुभूतियों की गाथा है जिसकी भाव वस्तु तीव्रता, गहनता और एकाग्रता में अनूठी है और सघनता में लगभग काव्यात्मक है। यह प्रेम की उपलब्धि का, उसकी प्रौढ़ और प्रबल अनुभूति का, उसके द्वारा व्यक्तित्व के प्रस्फुटन और परिपूर्णता का उपन्यास है। एक प्रकार से यह एक मात्र हिन्दी उपन्यास है जिसमें ऐसे प्रेम का चित्रण है, जो वर्जनाओं से संत्रहस्त नहीं है, जो एकान्त रूप में व्यक्तिनिष्ठ होकर भी कठिन नहीं है। जिसमें समर्पण तथा पीड़ा भी है, साथ ही उसका अतिरिक्त प्रतिफलन भी। हिन्दी उपन्यास में प्रेम का जो रूप प्रस्तुत हो रहा है, उसमें प्रायः व्यक्ति की कुंठा का, उसके ऊपर भारी पत्थर की भाँति रखी हुई सामाजिक अथवा निजी संस्कारगत वर्जनाओं का बोझ ही प्रक्षेपित हो सका है। नदी के द्वीप इस दृष्टि से हिन्दी के सभी उपन्यासों से भिन्न हैं उसमें चित्रित पुरुष और स्त्री का प्रेम असामाजिक होते हुए भी व्यक्तित्व को विकृत नहीं करता। इस प्रकार के चित्रण की प्रौढ़ता के कारण 'नदी के द्वीप' हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के श्रेष्ठतम उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है।

'अपने–अपने अजनबी' का केन्द्रीय विषय 'शेखरः एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' से सर्वथा भिन्न मृत्युबोध, पीड़ाबोध, अजनबीपन, वरण की समस्या और जीवन के प्रति आस्था के प्रश्नों से जुड़ा हुआ है, यद्यपि प्रासंगिक रूप से काल बोध, ईश्वर और मृत्यु अस्तित्वबोध आदि प्रश्नों पर भी बीच–बीच में विचार व्यक्त हुए हैं। 'अपने–अपने अजनबी' इस दृष्टिकोण से एक सामान्य उपन्यास है जो मात्र अज्ञेय की भाषा और शिल्प–कौशल के बल पर उल्लेखनीय उपन्यासों की कोटि में परिगणित हो पायेगा।

इलाचन्द्र जोशी –

साहित्य की व्याख्या करते हुए जोशी जी ने लिखा है– ''साहित्य का अर्थ ही वह कला है, जो जीवन के सहित अर्थात् साथ हो। इसलिए आज के अभाव के युग में यदि सच्चे साहित्य का प्रतिष्ठान करना हो तो उन सब उपकरणों को बटोरना होगा, जो यथार्थ जीवन की प्रगति के साथ है। जनता की भूख–प्यास और आर्थिक संकट की समस्याओं को अपनाकर उन्हें प्रतिभा के रासायनिक स्पर्श से साहित्यिक रस में परिणत करना होगा और फिर साहित्यिक रस का उपभोग सामूहिक मानवहित के उद्‌देश्य से करना होगा।'' जनता की आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं को साहित्य रस में परिणत करने क लिए जोशी जी ने प्रतिभा के जिस रासायनिक स्पर्श की बात कही है, वह और कुछ नहीं मनोवैश्लेषिक उपाय मात्र है। आपने अन्यत्र ऐसे ही सन्दर्भ में कहा है– ''बड़े से बड़े राजनैतिक सत्य को पहले वेष बदल कर अर्न्तजगत में प्रवेश करना होगा, तभी वहाँ से वह मनोवैश्लेषिक उपायों से साहित्यिक सत्य के रूप में बाहर प्रस्फुटित हो सकता है।'' वस्तुतः जोशी जी अवचेतन में मंचित होने वाली मानव प्रवृत्तियों को, मानव के वैयक्तिव, पारिवारिक तथा सामाजिक संगठनों की संचालिका मानते हैं। अर्न्तजीवन की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हैं और आज के पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद के विस्तार के मूल में भी मनोवैज्ञानिक कारणों की उपस्थिति अनिवार्य मानते हैं। जोशी जी कि विशेषता यह है कि अनिवार्य को महत्व देते हुए भी वे सचेतन मन की अवहेलना नहीं करते। वे दोनों के समन्वय पर बल देते हैं। वे कहते हैं– ''जब तक कोई लेखक अवचेतन मन के छाया–स्वप्नों को सचेतन मन की निहाई पर रखकर विवेक के हथौड़े की चोटों से उनका नव–निर्माण नहीं करता, तब तक वह वास्तविक अर्थ में साहित्य निर्माता हो नहीं सकता है न उसका कच्ची अवस्था में दिया हुआ साहित्य पदार्थ स्वस्थ और मांगलिक ही हो सकता है।'' इसी दृष्टि में ये फ्रायडवाद और मार्क्सवाद में समन्वय स्थापित करना चाहते हैं। आधुनिक हिन्दी–साहित्य की 'छायावादी' और मार्क्सवाद में काव्यधाराओं को आप एकांगी बताते हैं। इनकी दृष्टि में छायावाद अवचेतन मन के भीतर से अन्धवेग से प्रस्फुटित हुई कला है और प्रगति बाहयजगत की विचारधारा के साथ केवल सचेतन मन की ऊपरी सतह के टकराहट की उपज है। जोशी जी चेतन मन के साथ ही अवचेतन और ऊर्ध्वचेतन मन की

[2] शेखर एक जीवनी भूमिका पृ0–10

स्थितियाँ भी स्वीकार करते हैं, किन्तु अस्तित्व का मूल केन्द्र विश्वजनीन अवचेतन में ही निहित मानते हैं। आपके अनुसार ''यह सामूहिक अंतरानुभूतिलोक ही वह जगत है, जहाँ से सृष्टि की मूल संचालिका शक्तियाँ निरन्तर नये–नये रूपों में विकसित होती चली जाती है, इसी के भीतर वे अगाध स्वप्न निहित हैं, जो इन्द्रधनुषी रंगों से बहिश्चेतना अथवा बाह्य जगत को प्रतिपल छा रहे हैं।[3]

इनके उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. **घृणामयी** : (जो अब लज्जा नाम से प्रचलित है) में लज्जा नामक आधुनिक शिक्षा प्राप्त युवती की काम–चेष्टाओं का मनोविश्लेषण किया गया है।
2. **सन्यासी** : यह आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें नायक नन्द किशोर के अहंभाव का मनोविश्लेषण किया गया है। अन्त में नन्द किशोर सन्यासी हो जाता है और देश सेवा में अपने को लगा देता है। यह उसके अहंभाव का उन्नयन है।
3. **पर्दे की रानी** : इसमें नायिका निरंजना खूनी पिता और वैश्या माता की पुत्री है। यह जानकारी उसमें हीनता ग्रन्थि उत्पन्न करती है और वह समाज के प्रति घृणा और प्रतिहिंसा का भाव रखने लगती हैं।
4. **प्रेत और छाया** : इसमें नायक परसनाथ को पता चलता है कि उसकी माँ वैश्या थी उसमें हीनता की भावना उत्पन्न होती हैं और वह समस्त नारी जाति से घृणा करने लगता है।
5. **निर्वासित** : इसमें 'महीप' एक भावुक कवि है, वह 'नीलिमा' को प्रेम करता है, किन्तु उसका व्यक्तित्व आकर्षक नहीं है। महीप अन्य क्षेत्रों में अपनी महत्ता स्थापित करके नीलिमा को प्रभावित करना चाहता है। वह क्रान्तिकारी बन जाता है। उसका अन्त एक निराश प्रेमी का अन्त बन जाता है। वह अस्पताल में रोगग्रस्त होकर मर जाता है।
6. **मुक्तिपथ** : इसमें जोशी जी की उपन्यासकला में एक उल्लेखनीय अन्तर लक्षित होता है। वे मनो–विश्लेषण को साध्य न बनाकर साधन रूप में इस्तेमाल करते हैं। सामाजिक प्रश्नों को महत्व देते हैं और व्यैक्तिक जीवन के एकान्त विश्लेषण से थोड़ा हट जाते हैं। इसमें कथानायक राजीव विधवा 'सुनन्दा' से प्रेम करता है समाज के कटाक्षों को सहन करता हुआ वह उसे लेकर शरणार्थी बस्ती में चला जाता है। यहाँ उनके सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वह सुनन्दा की नारी सुलभ सकुमार भावनाओं को महत्व नहीं देता। निराश होकर सुनन्द वहाँ से चली जाती है।
7. **जिप्सी** : (अब 'त्याग का भोग' नाम से प्रकाशित) की नायिका 'मनिया' नामक एक जिप्सी बालिका है। मनिया की माँ ने अपने पति की हत्या करके स्वयं को भी मार लिया था। मनिया इस कुंठा से ग्रस्त है। उसके जीवन में रंजन आता है। रंजन उसकी कुंठा को दूर करना चाहता है। मनिया माँ बन जाती है और स्वभावतः उसका स्नेह नवजात शिशु के प्रति बढ़ जाता है। रंजन को ईर्ष्या होती है। वह वीरेन्द्र की पत्नी शोभना की ओर आकृष्ट होता है। मनिया की मुखाकृति तेजाब गिरने से विकृत हो जाती है। बच्चे की मृत्यु हो जाती है। मनिया वीरेन्द्र द्वारा संचालित एक जनवादी संस्था से काम करने लगती है। वह अमेरिका जाती है और प्लास्टिक सर्जरी से अपनी आकृति ठीक करा लेती है। अब वह एक नर्स के रूप में समाज सेवा में लग जाती है और इस प्रकार अपनी कुठाओं का उदात्तीकरण कर लेती है।
8. **सुबह के भूले** : इसमें गुलबिया नामक एक साधारण किसान की लड़की मध्यवर्गी परिवेश में पलकर अभिनेत्री हो जाती है और बाद में वहाँ के कृत्रिम जीवन से उबकर पुनः अपने सीधे–सादे ग्रामीण परिवेश में लौट आती है। इसका कथानक यथार्थवादी एवं स्वाभाविक क्रम से विकसित नहीं हो पाया है। मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति कम है।
9. **जहाज का पंछी** : इसमें कथानक एक शिक्षित नवयुवक है। वह कलकत्ता महानगर में काम की तलाश में भटकता है। कलकत्ता नगरी वह जहाज है, जिसमें वह चारों ओर भटक कर लौट आता है। कथानायक ज्योतिषी के रूप में, गिरहकट के रूप में, ट्यूयटर के रूप में, धोबी के मुनीम के रूप में, भादुड़ी परिवार में रसोइये के रूप में, चकले में और निपट अकेली सम्पन्न महिला लीला के सेवक के रूप में आधुनिक महानगरी की विविध जीवन स्थितियों का अनुभव करता है। वह संघर्षशील मध्यवर्गीय युवकों का प्रतिनिधि है। उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है।

[3] हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ0–634

10. **ऋतुचक्र :** इसमें आधुनिकता के दबाव के कारण पिछले सभी मूल्य, मान्यताएं और आदर्श आज तेजी से ढह रहे हैं, किन्तु उनके स्थान पर नये मूल्य और आदर्शों का निर्माण नहीं हो पा रहा है।
11. **भूत का भविष्य :** इसमें जोशी जी यह अनुभव करते हैं कि आज के दुनिया में 'भय' की सत्ता ही सर्वोपरि है। यह जीवन का एकमात्र सत्य बन गया है। यही जीने का सहारा भी है। इसे हम 'भूत का भविष्य' कह सकते हैं।
12. **कवि की प्रेयसी :** इसमें जोशी जी कालिदास द्वारा 'मालविकाग्नि–मित्रम्' नाटक में उल्लिखित कवि–नाटककार 'सौमिल्लिक' के जीवन की काल्पनिक सृष्टि की है। कालिदास ने 'भास' के साथ इसका उल्लेख किया है। इसके विषय में इतिहास मौन है। जोशी जी आज के यान्त्रिक जीवन की नीरसता दूर करने के लिए रस सिक्त काल्पनिक सृष्टि को आधार बनाना चाहते हैं। जोशी जी हिन्दी–उपन्यासों में मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति के प्रवर्तक और उन्नायक है। वे व्यक्ति–मन के पर्दों में छिपे हुए रहस्यों का उद्घाटन करना आवश्यक मानते हैं। उनके उपन्यासों के सभी नायक दुर्बल और मनोग्रन्थि–पीड़ित है। जोशी जी इसे आज के मध्यवर्ग की अनिवार्य विशेषता मानते हैं। अपने परवर्ती उपन्यासों में उन्होंने सामाजिक सत्य को भी चित्रित करने की चेष्टा की है। हिन्दी उपन्यासों में मनोविश्लेषण की विशिष्ट प्रवृत्ति के प्रवर्तन के लिए जोशी जी का महत्व अक्षुण्ण रहेगा।

(हिन्दी का गद्य साहित्य–पृ.–181)

जैनेन्द्र कुमार –

जैनेन्द्र गाँधीवाद के अध्यात्म पक्ष पर बल देते हुए आत्म–पीड़न के द्वारा हृदय परिवर्तन में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार मानव में दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं– स्पर्धा और समर्पण। स्पर्धा अहं का सृजन करती है। समपर्ण–वृत्ति 'स्व' को 'पर' के लिए उत्सर्ग कर देने में अपनी सार्थकता अनुभव करती है। जैनेन्द्र ने 'अहं' की निस्सारता दिखाकर समर्पण द्वारा 'स्व' और 'पर' में अभेद स्थापित करने की चेष्टा की है। 'अहं' को विगलित करने में पीड़ा और व्यथा ही समर्थ हैं व्यथा का तीव्रतम रूप कामगत यातना में प्राप्त होता है। इसलिए जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में काम–पीड़ा और समर्पण का चित्रण करके अहं का विसर्जन किया है। मानव की मूल वृत्तियों के संघर्ष को समझने और उभारने के लिए जैनेन्द्र को अन्तर्मुखी होना पड़ा है। वे व्यक्ति–मन की अतल गहरायी में उतरे हैं, थोड़े अबूझ और रहस्यमय हुए हैं। स्वयं उन्हीं के शब्दों में– ''जो एकदम वास्तविकता में लिप्त हैं– वह फिर चाहे जितना भी बड़ा आदमी समझा जाता हो– सफल उपन्यासकार नहीं हो सकता। एकदम जरूरी है कि वह कुछ अबोध भी हो, मिस्टिक हो।'' जैनेन्द्र के प्रायः सभी उपन्यासों में काम–पीड़ा का दर्शन स्वीकार किया गया है। काम–अभुक्ति मानव को खण्डित कर देती है। वह भटकने लगता है। विद्रोही और उच्छंखल हो जाता है। उसका दृष्टिकोण ध्वंसात्मक हो जाता है। नारी के समर्पण से ही वह सन्तुलित हो पाता है।

परख :

इसमें कट्टो और सत्यधन, सुनीता में सुनीता और हरिप्रसन्न, त्यागपत्र में मृणाल, कल्याणी में कल्याणी, सुखदा में सुखदा और लाल, विवर्त में भुवन–मोहिनी और जितेन, व्यतीत में जयन्त और अनीता, तथा जयवर्धन में जय और इला के बीच काम–अभुक्ति ही प्रधान है। जैनेन्द्र ने अपने ढंग से स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध को मानसिक धरातल पर विवेचित कर उसका उदात्तीकरण करना चाहा है। धीरे–धीरे उनका यह प्रयोग विवाह–संस्था के निषेध का रूप ले लेता है। नारी–पुरुष के अहं को विघटित करने के लिए उसके प्रति समर्पित हो सकती है, किन्तु इसके लिए विवाहिता होना आवश्यक नहीं है। 'मुक्तिबोध' में 'पत्नी' का स्वीकार तो है, किन्तु वह इसलिए कि 'उमर आने पर उसकी गहरी वत्सलता पति को ही प्राप्त होती है।'' वैसे प्रेरणा और स्फूर्ति यहाँ भी 'पत्नी' (राजश्री) से नहीं प्रेमिका (नीला) से ही प्राप्त होती है। अनन्तर में भी केन्द्र में 'अपराजिता' को रखा गया है, जिसने अपने अंगरेज पति चार्ल्स को इसलिए तलाक दे दिया है कि वह अपने को अधिक मानता था। यहाँ भी पत्नी (रामेश्वरी) नहीं प्रेमिका (अपराजिता) ही जीवन में गति और स्फूर्ति प्रदान करती है नयी दुनिया को लाने वाला प्रकाश साफ कहता है– हिन्दुस्तान में कुनबां एक कोल्हू होता है लड़का उसमें जूते और चकराता रहे। ऐसे क्या फिर नयी दुनिया लाने के लिए वह बचा रह सकता है? अनामस्वामी की 'उदिता'

का मानना है कि ''विकास प्राप्त समाज उस आवश्यकता से (पिता के नाम के साथ माता के स्वीकार्य) मुक्ति पा निकला है। उन्नति और प्रगति की ओर इतनी चुनौतियाँ हैं कि अब माँ बनना तरूणी के लिए आवश्यक नहीं है।'' अन्त में लेखक ने उदिता को अमेरिका में तीसरे प्रेम के बाद विवाह स्वीकार करके सुख–सुविधा से जीवन व्यतीत करते दिखाया है। उसका लक्ष्य मानव जाति को धार्मिक रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त करना है। दर्शाक में विवाह सम्बन्ध टूटने पर स्त्री को वैश्या जीवन व्यतीत करने के लिए विवश दिखाया गया है। सम्बन्ध टूटने का कारण पैसा है। पैसे की प्रधानता होने पर सहज मानवीयता का ह्रास होता है और स्त्री भी माल बन जाती है। ऐसी स्थिति में वर्तमान मर्यादाओं पर चोट करना आवश्यक है।

पैसे की जगह प्यार की प्रतिष्ठा से ही मानवता का कल्याण सम्भव है। इस प्रकार परवर्ती उपन्यासों में जैनेन्द्र में पूँजीवाद से उत्पन्न भोगवादी संस्कृति पर प्रहार करते हुए यांत्रिकता के ऊपर मानवीयता और वैसे की जगह प्यार को प्रतिष्ठित करना चाहा है, किन्तु यह सब उन्होंने अपनी विरल दार्शनिक तर्क–पद्धति के सहारे चिन्तन के स्वर पर ही किया है। इसलिए गोविन्द मिश्र को 'दशार्क' उपन्यास कम एक चिंतन ग्रन्थ ज्यादा लगा है।

वस्तुतः जैनेन्द्र की यह रहस्यमय दार्शनिक मुद्रा प्रारम्भ से ही लक्षित की जा सकती है और उनका यह चिन्तक रूप उनके उपन्यासकार पर निरन्तर छाया रहा है।

(हिन्दी का गद्य–साहित्य, पृ.सं.–180)

अज्ञेय, जोशी, तथा जैनेन्द्र के मनोविश्लेषण का तुलनात्मक वर्णन :

मनोविश्लेषण की सोद्धेश्यता के प्रसंग में जब प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक परिदृश्य पर नजर दौड़ाई जाती है तो अक्सर जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय, तीनों लगभग एकदम अड़ोस–पड़ोस के लेखक प्रतीत होते हैं। लेकिन इन तीनों उपन्यासकारों के यहाँ मनोविश्लेषण के उपयोग की यदि तुलना करके देखी जाए, तो तीनों की रचना–दृष्टि का अन्तर पहचाना जा सकता है। जोशी के यहाँ मनोविश्लेषण की साग्रहता शुरू से ही जैनेन्द्र और अज्ञेय की अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट दिखती है, इस कदर स्पष्ट है कि अक्सर वह साग्रहता रचना की संवेदना को स्थूल बनाकर भोथरा कर देती है। जैनेन्द्र के यहाँ मनो–विश्लेषण उनकी दार्शनिक अभिवृत्ति से आवृत्त मिलता है और अज्ञेय के यहाँ ''व्यक्तित्व के खोज के दर्शन'' से नियन्त्रित। इसलिए जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासों में मनोविश्लेषण के अन्तर्गत स्थूलता का कोई अंदेशा नहीं रहता। सूक्ष्मता ही उसका मूल गुण है। जैनेन्द्र का मानना है कि जो तीर की तरह अंतः तक जा लगे, बुद्धि के पटल और जाल को भेद कर मर्म में घुस जाये और हलचल उपस्थित कर दे वह सच्ची चीज है, उपादेय है और वह जीने और जिलाने के लिए आई है।'' जोशी को अन्तर्भेदी तीर नहीं, ''अन्तः प्रवेशक प्रवेशक अस्त्र'' चाहिए था जो उन्हें मनोविश्लेषण शास्त्र के रूप में मिला। जोशी को उस ''अस्त्र'' की अंतः प्रवेशकता'' पर तो भरोसा था ही, साथ ही यह विश्वास भी था कि वह मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों के ''पूर्ण ज्ञान'' का माध्यम भी है। अज्ञेय ने मनोविश्लेषण का प्रयोग न तो ''अन्तर्भेदी तीर'' की तरह किया, न ''अंतः प्रदेशक अस्त्र'' की तरह, बल्कि व्यक्ति के सचेतन आत्म–साक्षात्कार की प्रविधि के तौर पर किया। अज्ञेय के लिए मनोविश्लेषण की सार्थकता व्यक्ति के ''पूर्ण आत्मसाक्षात्कार'' का माध्यम बनने भर में है, जोशी की तरह उसे मूल प्रवृत्तियों के ''पूर्ण ज्ञान'' का माध्यम बनते देखने में नहीं। जहाँ तक जैनेन्द्र का प्रश्न है, जैनेन्द्र के लिए पूर्णतः अपूर्णतः का कोई मतलब ही नहीं है। जैनेन्द्र का यथार्थ सम्बन्धी–दृष्टिकोण यह है– ''यथार्थ यथार्थ है और तत्सम्बन्धी हमारी समझे (ज्ञान–विज्ञान) हमारे ही धरौंदे हैं। सच सबके पार है।'' जैनेन्द्र के यहाँ जो सच ''ज्ञान–विज्ञान'' सबके पार है, जोशी के यहाँ उसे ''ज्ञान–विज्ञान'' के भीतर से उपलब्ध करने की कोशिश मिलती है। इसलिए जोशी के उपन्यासों में जैनेन्द्र की स्त्री मुनिनुमा दार्शनिक मुद्रा नहीं मिलती। जोशी अपने लेखक की सार्थकता दार्शनिक होने में नहीं, ''दर्शक'' मात्र होने में मानते हैं। अपने उपन्यास ''निर्वासित'' की भूमिका में जोशी लिखते भी हैं'– ''मैं जीवन का विनम्र दर्शक मात्र हूँ। जीवन में घटित होने वाली कुछ विशेष घटनाओं को लेकर उन्हें कुछ विशेष पात्रों के जीवन सूत्र में पिरोकर अपनी योग्यतानुसार यथार्थ चित्र अंकित करने का प्रयास भर सकता हूँ।'' अज्ञेय के लिए रचनाकार होना, न दार्शनिक होने का उपक्रम है, न दर्शक होने का। उनके लिए महत्वपूर्ण है ''दृष्टा'' होना। और वे मानते हैं, ''घोर यातना व्यक्ति को दृष्टा बना देती है।'' इसलिए मनोविश्लेषण के सहारे न तो वे जैनेन्द्र की तरह अपने पात्रों में अंतर्लीन होते हैं, न जोशी की तरह अपने पात्रों का अंतरावलोकन करने की जहमत उठाते हैं। अज्ञेय

मनोविश्लेषण के साथ किसी प्रकार के आशावाद की नत्थी नहीं करते। ''घोर यातना'' का मनोविज्ञान उद्‌घाटित करते हुए शुरू में वे ''घोर निराशा'' तक का महत्व बताने लग जाते हैं– ''घोर यातना'' व्यक्ति को दृष्टा बना देती है, यहाँ यह भी कहूँ कि घोर निराशा उसे अनासक्त बना कर दृष्टा होने के लिए तैयार करती है।

वस्तुतः रचना में मनोविश्लेषण के उद्‌देश्य को लेकर हिन्दी कथाकारों के मुख्यतया दो वर्ग माने जा सकते हैं। एक वर्ग उन कथाकारों का है जो अपने पात्रों के अचेतन और अवचेतन में झाँक कर उसकी मनोग्रन्थियों का उद्‌घाटन इस उद्‌देश्य से करते हैं कि उनके व्यक्तित्व का उपचार करने की दिशा तलाशी जा सके और इस तरह, अंततः व्यक्तित्व का सामाजीकरण सम्भव होता दिखे। दूसरे वर्ग में ऐसे कथाकार आते हैं जो मनोविश्लेषण को किसी उपचारात्मक उद्‌देश्य के लिए नहीं उपयोग में लाते बल्कि उसके माध्यम से व्यक्ति के अहं भाव की चरितार्थता उभारना चाहते हैं।

(शेखर एक जीवनी : विविध आयाम–पृष्ठ–119)